स्वतंत्रता अभिव्यक्ति या अराजकता की

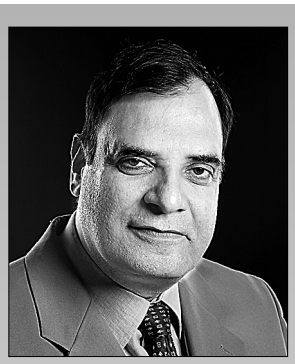

आलोक मेहता

(पत्रकारिता की दुनिया में अपनी बेबाक टिप्पणियों के लिए 'प्रसिद्ध पद्मश्री डॉ आलोक मेहता वर्तमान में नईदुनिया के 'प्रधान सम्पादक हैं। उन्होंने दैनिक हिन्दुस्तान, नवभारत टाइम्स, दैनिक भास्कर और आउटलुक में सम्पादक रहकर पत्रकारिता को नई ऊंचाइयों तक पहुंचाया। श्री मेहता एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के अध्यक्ष रह चुके हैं और भारतीय 'प्रेस परिषद के भी सदस्य रहे हैं।)

स्वतंत्रता दिवस पर हर बार लाल किले के साथ संपूर्ण राष्ट्र में नारा गूंजता है- 'जय हिन्द-जय हिन्द। आजादी अमर रहे।' स्वतंत्रता की सबसे बड़ी उपलब्धि है अभिव्यक्ति की आजादी। लेकिन आजादी के 64 वर्ष बाद भारत में ही नहीं दुनिया के अन्य स्वतंत्र लोकतांत्रिक देशों में भी सवाल उठ रहा है कि अभिव्यक्ति की और समाचार माध्यमों की स्वतंत्रता की कोई सीमा रहेगी या नहीं? आजादी के नाम पर नागरिकों की निजता में घुसपैठ के साथ अराजकता के आह्वान और किसी भी माध्यम से चरित्र हनन का अधिकार क्या उचित है?

इस संदर्भ में स्वतंत्र भारत के निर्माता पं. जवाहरलाल नेहरू की बात याद करना जरूरी है। पं. नेहरू ने 17 सितंबर 1952 में संपादकों को संबोधित करते हुए कहा था- ''आप अखबारों की आजादी की बात करते हैं। क्या किसी भी व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह एक पर्चा निकाले और अखबारों की स्वतंत्रता के उच्च सिद्धांत की आड़ में जो कुछ चाहे- कहे और हर गलत काम करे? उस पर अंकुश सिर्फ रुपए या ग्राहक संख्या का हो सकता है और वह हर तरह के उलटे-सीधे विचार फैलाकर काफी शैतानी कर सकता है। मान लीजिए कोई मशहूर डाकू, साफ तौर से नहीं सही, छद्म तरीके से डाका डालने का प्रचार करने लगे तो क्या हो? ऐसी हालत में अखबारों की स्वाधीनता का मतलब होगा- डकैती डालने का या दूसरों से नफरत करने के प्रचार का, जो आज भी बहुत से देशों में देखने को मिलता है।''

दूरदर्शी अंतरराष्ट्रीय नेता ने बहुत पहले अभिव्यक्ति की स्वच्छंदता को अनुचित करार दिया था। पिछले दिनों ब्रिटेन में मीडिया सम्राट मर्डोक के सबसे बड़े अखबार को इसलिए बंद करना पड़ा क्योंकि उसके प्रबंधकों और पत्रकारों ने चोरी से पचासों लोगों के फोन सुनकर गलत तरीकों से खबरें उछालकर पूरे समाज को विचलित कर दिया। इस अपराध में सत्तारूढ़ नेता भी कठघरे में खड़े दिखाई दिए। पश्चिमी देशों के मीडिया की स्वतंत्रता से प्रेरित भारतीय मीडिया- विशेषकर टीवी के कुछ समाचार चैनलों के रवैए पर उत्तेजक चर्चाएं होने लगी हैं। समाज ही नहीं सरकार, प्रतिपक्ष और न्यायपालिका तक उच्छृंखलता को लेकर अपनी नाराजगी व्यक्त कर रही है। टीवी समाचार चैनलों ने आत्मानुशासन के लिए स्वयं सुप्रीम कोर्ट के पूर्व न्यायाधीश न्यायमूर्ति जेएस वर्मा को न्यायिक व्यवस्था देने का दायित्व सौंपा। इस पहल का उद्देश्य यह था कि किसी सरकारी हस्तक्षेप के बजाय शिकायतों और गड़बड़ियों पर स्वतंत्र-निष्पक्ष सलाह और जरूरत पड़ने पर सांकेतिक दंड मिल सके। प्रारंभ में यह सिलसिला सौहार्दपूर्ण ढंग से चला। लेकिन हाल के महीनों में दोनों पक्ष दु:खी और उखड़े हुए हैं। शिकायतें बढ़ने और उनमें औचित्य दिखने पर कोई ईमानदार निष्पक्ष न्यायमूर्ति चुप नहीं रह सकते,

ऐसा नहीं है कि मुनाफे के चक्कर में यह प्रवृत्ति पहली बार सामने आ रही है। साठ के दशक में भी एक बड़े अखबार के संपादक ने प्रधानमंत्री नेहरू के सामने अपनी ऐसी मजबूरी स्वीकारी थी। उसने तर्क दिया था कि प्रबंधन के दबाव के कारण वह ऐसी बातें लिख और छाप रहा है, जो सही नहीं हैं और इससे सामाजिक वातावरण तनावपूर्ण हो रहा है। लेकिन इससे अखबार की बिक्री बढ़ती है। उसने यह भी कहा कि वह नौकरी गंवाकर बेकार भी नहीं बैठ सकता। लगभग ऐसे ही तर्क आज के संपादक दे रहे हैं।

जबकि प्रतियोगी बाजार में खड़े कुछ समाचार चैनल सीमाओं को स्वीकारने को तैयार नहीं हो रहे हैं। राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं क्षेत्रीय स्तर पर भी एक के बाद एक नए टीवी चैनलों की बाढ़ सी आ गई है। सरकार ने हाल ही में पांच सौ से अधिक नए टीवी चैनलों की अनुमति दे दी है। टीवी चैनलों की आचार संहिता के लिए मीडिया परिषद का प्रस्ताव भी अधर में लटका हुआ है। वैसे अखबारों के लिए बनी हुई भारतीय प्रेस परिषद ही असहाय और खानापूर्ति वाली स्थिति में पड़ी हुई है, क्योंकि शिकायतों पर उसके निर्णयों तक को अखबारों में जगह नहीं मिलती। शक्तिशाली मीडिया संस्थान तो नोटिस का